

देश-विभाजन के औपन्यासिक संदर्भ और भारतीय : एक दृष्टिकोण

सारांश

सन् 1947 का 15 अगस्त देश की आजादी और देश के विभाजन का जहर दोनों को याद दिलाता है। भारत देश आजादी का उत्सव हर वर्ष मनाता है।तो क्या भारतीय हर वर्ष बंटवारे की पीड़ा को नहीं महसूसते?....'शायद' हाँ। पर 'यकीनन' नहीं ...। सुनने में तो यह विचार विवादस्पद लगता है। किन्तु है यह सत्य। पता है क्यों?क्योंकि हर भारतीय में से अधिकांश भारतीयों की सामाजिक चेतना और प्रतिक्रिया विभाजन के दुर्भाग्य को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर चुकी है। इतना ही नहीं विभाजन के मकसद (जातिवादी साम्प्रदायिकतावादी संकीर्ण मानसिकता) को अमरत्व प्रदान कर चुकी है। हमारी संवेदनाएँ वर्तमान के संदर्भ में तार्किक और आधुनिक होने के बजाए संकीर्ण और रूढ़ हो चुकी हैं। शिक्षा के शब्दकोश में बेबस्टर ने कहा है कि "प्राणी अथवा प्राणी समूह को प्रभावित करनेवाली बाह्य परिस्थितियों एवं प्रभावों के समग्र"को पर्यावरण कहते हैं। इस दृष्टि से वे सभी घटनाक्रम (Phenomenon) जो बाह्य हैं तथा जनसंख्या पर प्रभाव रखते हैं, पर्यावरण कहलायेंगे। 1932 ई0 में जीन जियाजे ने कहा था कि व्यक्ति के प्रत्येक संज्ञानात्मक क्रिया पर उसके नैतिक और सामाजिक पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। मरे (1930) ने भी व्यक्ति के व्यवहार पर वातावरण के प्रभाव की बात कही है। अतः यह मुमकिन है कि यदि आज किसी भारतीय को देश के विभाजन की वस्तुस्थिति से पुनः अवगत कराया जाये; तो उसके मन में घर कर चुकी पाकिस्तानी दुश्मनी, सांप्रदायिक मानसिकता को एक निष्पक्ष एवं स्वस्थ दृष्टिकोण प्राप्त हो सके। एक भारतीय नागरिक की संवेदना एवं जनमत संकीर्ण राष्ट्रीयता की कैद से स्वतंत्र होकर शिक्षित और संवेदनशील सरोकार से जुड़ सकेंगे। ... और भारतीय पर्यावरण न केवल प्रदूषण (पॉल्यूशन), बल्कि विकृति (डिफार्मेशन) की समस्या से भी उभर सकेगा।



मंजुला

असिस्टेंट प्रोफेसर
शिक्षा शास्त्र विभाग,
इस्लामिया टी. टी. (बी. एड.)
कॉलेज, फुलवारीशरीफ,
पटना

मुख्य शब्द : देश विभाजन, भारतीय, सामाजिक चेतना, सामाजिक प्रतिक्रिया, जनमत, संवेदना, सरोकार।

प्रस्तावना

हम जानते हैं कि धरती पर मनुष्य ने लाखों वर्षों में बहुत प्रगति की है और अब भी वह हमारी दुनियाँ में संस्कृति के ऊँचे सोपानों पर चढ़ने का प्रयत्नशील है। हमने विज्ञान और अविष्कार की दिशा में प्रगति की है। चिकित्सा विज्ञान ने बहुत से रोगों पर विजय पा ली है। टेलीविजन और सेटलाइट ने मनुष्य के शैक्षिक मनोरंजन में वृद्धि की है। प्लास्टिक तथा अन्य पदार्थों ने हमारे आधुनिक जीवन को अत्यधिक रोचक बना दिया है। इसी प्रकार शिक्षा की दिशा में भी प्रगति हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूरे विश्व में विशेषकर अमरीका तथा यूरोप में प्रौढ़ शिक्षा का विस्तार किया गया। भारत सहित समस्त विकासशील देशों ने शिक्षा के क्षेत्र में नवाचारों का स्वागत किया, उसे अपनाने के लिए कटिबद्ध दिखे। व्यापारिक संस्थाओं में तत्सम्बन्ध खोज और प्रयोग करने की दृष्टि से प्रशिक्षण प्राप्त वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की आवश्यकता महसूस की गई। मानव जाति की उपयोगिता के लिए बहुत से क्षेत्रों में परमाणु शक्ति के रचनात्मक प्रयोग की सम्भावनाएँ असीमित दिखती थीं। इसके साथ ही कला का क्षेत्र भी प्रगतिशील दिखा। बहुत से देशों में भवन निर्माता आर्किटेक्ट, व्यापारी तथा सरकारें अपेक्षाकृत अधिक लोगों के लिए रिहाइश की बेहतर सुविधाएँ जुटाने में बहुत अधिक रुचि लेने लगे। कला के अन्य क्षेत्रों जैसे नाटक, रंगमंच, कथा, काव्य आदि में भी कमोबेश प्रगति दिखती रही, किन्तु उपर्युक्त समस्त मीमांसाओं के बीच एक पक्ष मनुष्य के चिंतन के पटल पर कम महत्व पाता हुआ देखा पाया। वह पक्ष था-मानवीय संवेदनाओं की त्रासदी के कारणों का निष्पक्ष और अनायास आकलन। जब हम अपने जीवन-जगत के हर दिशा में एक कदम

आगे बढ़कर नवीन आचार-विचार गढ़ रहे हैं, तो मानवीय-पीड़ा को जानने-समझने के लिए नई दृष्टि क्यों नहीं अपनाते? वैसे तो विश्व-इतिहास के गर्भ में कई ऐसी घटनायें हैं, जो हमें मानवीय-व्यथा के पुनर्विवेचन का आधार देती हैं। किन्तु यदि 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में सोंच, तो हम पाते हैं कि आतंकवाद एक ऐसी सार्वभौमिक समस्या है जो सबसे ज्यादा प्रासंगिक है मानवता एवं मानव-समाज को पीड़ा के लिए। इस आतंकवाद की सीधे कार्यवाही हिन्दुस्तान के जमीं में 'कश्मीर-समस्या' के नाम से जानी जाती है।

सवाल है कि यह कश्मीर-समस्या क्या केवल भौगोलिक समस्या है, या सांस्कृतिक भी? इतिहास इस प्रश्न पर गवाही तो देता है, किन्तु फैसेल नहीं सुनाता। यह नहीं कहता कि वहाँ की लड़ाई जमीन और जायदाद की नहीं, जनता और उसके बीच वैमनस्य की है। सवाल कश्मीर समस्या का हो या भारत की एकता, अखंडता या सौहार्द की सुरक्षा का यह प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि भारतीय जब सिंधी, पंजाबी, बंगाली, मराठी, तमिल, उड़िया, बिहारी, गुजराती, मद्रासी आदि होते हैं, तो उनकी वैमनस्यता राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए उस हद तक खतरा क्यों नहीं बनती जिस तरह कश्मीरी या मुसलमानों के बीच होने वाली वैमनस्यता? यह एक यक्ष प्रश्न है। इस प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में हमें अपे देश के स्वतंत्रताकालीन इतिहास का सर्वेक्षण करना होगा। हमने पाया है कि इतिहास ऐसे संदर्भों पर वैज्ञानिक व्याख्यान देता है, जैसे-देश का बंटवारा हो गया, जान-माल की क्षति हुई, लोग बेघर हो गए दोनों एक-दूसरे से लड़ने लगे.....आदि.....आदि। इतिहास के इन प्रमाणिक व्याख्यानों से स्थितियों का अभिज्ञान होता है, विपत्तियों की मौन पीड़ा का नहीं। यदि उन विपत्तियों पर शोध करना है, तो हमें तत्कालीन विषय पर आधारित साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन, मनन और विवेचन करना होगा। यह देखना होगा कि उन विपत्तियों, हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्यता, मानवता की नृशंस हत्या और व्यथाओं की पीड़ा हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को किस हद तक प्रभावित कर रही थीं? कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है और अरस्तु ने कहा है कि इतिहास विशिष्ट व्यक्तियों के कार्यों तथा अनुभवों का विवरण है।¹ ऐसे में उन साहित्यकारों एवं कृतियों का पुनःअध्ययन प्रासंगिक होगा, जहाँ भारत-विभाजन की त्रासदगाथा का कल्पित इतिहास संकलित है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

इस पृष्ठभूमि पर अभी तक न जाने कितने शोध, संघन एवं विमर्श हो चुके हैं। जिनमें 1. डॉ० सूर्यनारायण रणसुंभे, (देश विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य), संचयन 124/152 सी, गोविंद नगर, कानपुर, 2. डॉ० देवदत्त तिवारी, हिन्दी उपन्यास, स्वतंत्रता संघर्ष के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन विशेष उल्लेखनीय है।

इन दोनों पुस्तकों का अध्ययन शोधपरक विश्लेषण पर आधारित है। इनका संस्करण 1985 और 1987 में हुआ था। यहाँ यह भी कहना उचित एवं प्रासंगिक है कि अतिरिक्त इनके अन्य शोधकार्य, जो बंटवारे के परिप्रेक्ष्य पर हुआ है शोधपरक अध्ययन पर

आधारित है ना कि विवेचन पर। अतः उनकी चर्चा अप्रासंगिक है।

श्री रेणसुंभे एवं श्री तिवारी जी के लेखन में भी उपन्यास-कला की कसौटी पर विभाजन के दर्द का वर्णन है। इनमें पात्र और परिवेश के चित्रण पर विशेष बल दिया गया है।

किन्तु इनसे अलग प्रस्तुत शोध में विभाजन के दर्द को मानसिक प्रभावों का चित्रण है। लेखक की मानसिक अवस्था और उसके पात्रों की मनोदिशा में 'विभाजन का सच' पीड़ा दे रहा था, या सकून-इस सूक्ष्म संवेदना का उद्घाटन है।

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य देश के विभाजन पर लिखने वाले कथाकारों की मानसिकता का उनकी कृतियों के माध्यम से समझना था। अतः कथाकारों के चयन में उनकी जाति और उनकी कृतियों के प्रकाशन काल को सायास और सुनियोजित तरीके से चयनित किया गया। हमारे देश में साम्प्रदायिक समस्या का सीधे सम्बन्ध मुसलमान जाति से रहा है और पुनः इसका प्रभाव सिक्ख जातियों में भी कभी-कभार देखा गया है। इसीलिए कथाकारों के चयन में मुस्लिम लेखक (राही मासूम रजा) और सिंधी लेखक (बलबंत सिंह) को चुना गया। इसी प्रकार समयानुसार विभाजन के पूर्व की घटनाओं का चित्रण करने वाली कृति, विभाजन कालीन घटनाओं का चित्रण करने वाली कृति एवं विभाजनोपरांत घटनाओं का बेबाक चित्रण करने वाली कृतियों को शोध का विषयवस्तु माना गया। इस परिप्रेक्ष्य में क्रमशः सात (7) उपन्यासों पर तटस्थ भाव से कार्य किया गया। जो उपन्यास इस शोध कार्य के लिए उपयुक्त पाये गये। उनकी कला-शिल्प आदि के विवेचना के झमेले न बढ़ाकर 'प्रस्तुतीकरण' के माध्यम से 'मनोवृत्ति' को पढ़ने की कोशिश की गयी।

साथ ही यह विवरणात्मक गवेषणा समाज के एक ऐसे मंच का प्रतिनिधि साक्ष्य के रूप में भी प्रस्तुत है, जो इतिहास के उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना (बंटवारा) का साक्षात्कार बिना किसी वैचारिक पूर्वाग्रह या राजनीतिक दुराग्रह के आम नागरिकों के समक्ष चिंतन का, पुनः विवेचना की मांग करती है। जैसा कि हम जानते हैं कि देश विभाजन की घटना ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है। इस पृष्ठभूमि पर हम आजादी के 71 वर्षों के बाद भी मीमांसा क्यों करें? क्या इससे पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में बदल जाएगा? क्या परदेश की सीमाएं स्वदेश हो जाएंगी? नहीं। ऐसा कुछ नहीं होगा। किन्तु यदि हमें जातिवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद और आतंकवाद जैसी संकीर्ण और समसामयिक समस्याओं को समाज में बर्चस्व बनाने से रोकना है, तो आवश्यक है कि देश के आम नागरिकों को मानसिकता को स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान किया जाये। मानसिक धरातल पर हर व्यक्ति एक स्वस्थ और परिपक्व दृष्टिकोण का प्रणेता हो-यह नागरिकों के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आधुनिक विचारधारा प्रमाण चाहती है और क्षेत्रवाद, अलगाववाद और जातिवाद मनोवृत्ति वाले लोगों को देश के विभाजन से बड़ा प्रमाण और क्या दिया जा सकता है?² कल तक हम पाकिस्तान के लिए लड़ रहे थे

और आज कश्मीरी और गैर-कश्मीरी के नाम पर। कल हिन्दु और मुसलमान दंगे कर रहे थे और आज सबल और निर्बल के नाम पर हम देशवासी बात-बात पर पंगा बढ़ा लेते थे। कल अंग्रेज हमें लड़ा रहे थे और आज हमारे अहं की प्रभुता, हमारी अज्ञानता, हमारी संकीर्णता, हमारी स्वार्थपरता।³ सच तो यह है कि यदि इतिहास की सामाजिक व्याख्या की जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक प्रपंच से पलायन करके तत्कालीन भारतीय मनीषियों ने भौगोलिक अखण्डता को खंडित होने दिया। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को उन दिनों यदि प्राथमिक दर्जा दिया गया होता, तो शायद आजादी के 70 वर्ष के भारत को 'युवा भारत' कहे जाने का विशेष 'मोह' नहीं होता। यह उस 'मोह' की मानसिकता के बोल हैं, जिन्हें पता है— कि आजादी के 70 साल के बाद भी भारत अपनी किशोरावस्था की चपलता, चंचलता और भावुकता के नाजुक दौर से गुजर रहा है।कभी भी भटक सकता है।

सवाल है राजनीतिक प्रपंच हो या तत्कालीन हालात की विवशता। जैसा कि महात्मा गांधी ने भी स्वीकार किया था कि "रोज-रोज का मारकाट या देश का विभाजन। इन दोनों बुराइयों में से किसी एक को चुनना था।सो मैंने दूसरे को चुन लिया।" इस कथन का आशय हमारे राष्ट्रपिता की मानसिकता को समझने के लिए काफी है। परिणाम सामने था—राजनीतिक शर्तों पर भौगोलिक विभाजन। इस विषय पर राजनीतिक और ऐतिहासिक शोधकार्य के द्वारा सिर्फ सत्य का पक्ष उजागर होगा। वहीं यदि इस विषयवस्तु की यदि सामाजिक—सांस्कृतिक चेतना को निष्पक्ष समझना है, तो साहित्य के माध्यम से ज्यादा बेहतर विकल्प प्रस्तुत होगा। वैसे तो 'साहित्य' का अर्थ भी मीमांसा का विषय है। लार्ड मैकाले का कहना था कि Literature 'साहित्य' शब्द का अर्थ—सन् 1833 के चार्टर में पाये गये अंग्रेजी साहित्य से है। विवाद के बाद मैकाले ने प्रचारित किया था "A single shelf of a good European library was worth the whole halire literature."⁴ उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि भारतीय विद्वान वही कहलाएगा जिसने दर्शन तथा मिल्टन के काव्य का अध्ययन किया होगा।⁵और आज 'साहित्य' वह है, जिसमें सबका हित हो।

सच तो यह है कि ज्ञान और ज्ञाता को परिभाषित करना आकाश में पत्थर मारने के समान है। हमारा प्रयोजन साहित्य को और साहित्यकार को परिभाषित करना, इतिहास और राजनीतिक के सच को प्रमाणिक करना नहीं। प्रत्युत हमारे देश के मौजूदा साहित्य, विशेषतया राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में वर्णित विभाजन की विवशता, व्यथा और विवेकपूर्ण प्रस्तुत की गई व्याख्या की संवेदनशीलता को निष्पक्ष व तटस्थ भाव से महसूसना है। यह जानते तो सब हैं कि 'बहुत लड़ाई—झगड़ा, मार—काट' हुआ था किन्तु उसे 'जानने' को 'महसूस' ने के लिए दो ही माध्यम हो सकते हैं— कथात्मक प्रस्तुतीकरण या नाट्य—फिल्म मंचन।

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि हम कथानक की धरा में बहकर, तत्कालीन परिस्थिति की 'वैकल्पिक

प्रतिक्रिया' को बड़े ही सहज और सरल तरीके से महसूस कर लेते हैं। और तब हम कहते हैं कि अमूक लेखक के पात्र सजीव एवं सहज हैं। लेखकीय विचारधारा से स्वतंत्रता। अतः इसी संदर्भ में प्रस्तुत साहित्यिक कृतियों और कृत्तिकारों के बीच इस शोधकार्य में कम—से—कम व्यवधान डालने की हमारी मनोदशा बनती गई। इस शोध कार्य में न तो उपन्यास—कला की कसौटियों को नापने—तौलने की प्रवृत्ति की गई, न लेखकीय संवेदनाओं को परखने करने का दुःसाहस।.....हर पल, हर क्षण इस शोध की दिशा 'अभिव्यक्ति की संवेदनाओं' को तलाशने में तत्कालीन दिखाई पड़ती है। कथाकार और कथ्य के बीच शोधार्थी कहीं स्वयं न देखे—इस ओर विशेष ध्यान रखा गया है।

शोधकार्य का विकास

उपर्युक्त प्रयोजन के निहितार्थ कई चरणों पर कार्य किया जाना निश्चित हुआ। भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भारत व पाकिस्तान के नाम की विवेचना, भारतीय स्वतंत्रता—संघर्ष के पीछे छिपी अंग्रेजी मानसिकता को प्रकाश में लाना, निहित स्वार्थ के लिए प्रयोग में लाई गई विभाजनकारी प्रवृत्तियों को उद्घाटित करना, तत्कालीन परिस्थितियों पात्रों एवं संवादों के माध्यम से भुक्तभोगी एवं तटस्थ लेखनी में अंतर—स्थापित करना, 'भोगा हुआ यथार्थ' और 'सुना हुआ सच' के बीच विभेद एवं व्यंजना के स्तर पर होने वाले बदलाव को रेखांकित करना, वाद, विचारधारा एवं आंचलिक कथाकारों के मानसिक प्रतिक्रिया का प्रत्यक्षीकरण करना आदि। कहा जाता है कि "अनुभूति के संदर्भ में अभिव्यक्ति का जायजा लेना कहीं हमें अनुभूति को तटस्थ दृष्टि से देखने, उसे बड़ी और युगीन प्रमाणिकताओं से जोड़ने का सामर्थ्य देता है।"⁶ मौनसून की पहली बारिश से भी अब दिवारों को सीलन से नहीं बचा पा रही है, भले ही यह बयानबाजी मेरी व्यक्तिगत अनुभूति का प्रतिपफल है। किन्तु इससे यह बात भी उजागर तो हो ही जाती है न कि आजकल बाजार के सीमेंट, पुट्टी, रंग, चुने व राजमिस्त्री के गुणवत्ता में भी कहीं खोट है। ऐसी स्थिति में हमारे स्वयं की अनुभूति युग—बोध का प्रतीक बन ही जाती है।

कुछ ऐसी ही व्यंजना इन समस्त रचनाओं में हैं। रचनाकारों ने शब्दों, अनुभवों और स्थितियों के चित्रण से "यथार्थ का वातावरण" बनाया है। उदाहरण स्वरूप जरा इन पंक्तियों को पढ़ें —"कांग्रेस और लीग के नेताओं ने देश का बंटवारा स्वीकार कर लिया था। परन्तु भारत की जनता इससे खुश नहीं थी। सच तो यह था कि भारत का बंटवारा कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुआ था। भारत के मजदूर तथा जनता यह कभी नहीं चाहती थी कि भारत के दो टुकड़े किये जाएं। उच्च पूंजीपति वर्ग और सामंत वर्ग के लोग राजसत्ता को पाने के लिए तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कोशिश कर रहे थे कि भारत का बंटवारा हो जाए।"⁷ इसी प्रकार अमृत राय ने भी अपनी कृति 'बीज' में लिखा था कि "सांप्रदायिक दंगों की जो आग बंटवारे के दौरान लगी थी उसके प्रभाव आज भी देखने को मिलते हैं।"⁸

उपरोक्त कथन भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायित्व की टोह तलाशने में उस समय की

राजनीतिक परिस्थिति को उद्घाटित करता है। जहाँ तक स्वतंत्रता के पश्चात् देश की सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक स्थिति का आकलन है तो यह कहना सही होगा कि "स्वाधीन भारत में शिक्षित वर्ग से अनपढ़ तक, शहर से गांव तक, कारखाना के खेत तक का व्यक्ति एक बेहतर भविष्य की लड़ाई के लिए चेष्टारत जरूर है। इस चेष्टा में कहीं वह अकेले है— कहीं साझेदार को आवश्यक मानता है और कहीं सर्वथा विपरीत रीति-नीति का भी सहयोग लेना चाहता है।" 9 ऐसी स्थिति में समाज में असंतोष और तनाव फैलाता गया, जिसने 'त्रासदी' की बुनियाद खड़ी की। यशपाल जी के शब्दों में " बिहार और बंगाल तथा धीरे-धीरे संपूर्ण राष्ट्र में छूत के रोग की भांति फैलने वाला दिशाहीनता की स्थिति इसके लिए उत्तरदायी है।" 10 ठीक ही कहा गया है —"भारत का विभाजन हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के सांस्कृतिक संघर्ष का ही परिणाम है।"

प्रतिपाद्य उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण

पहले उपन्यास जिस पर इस शोध का उद्देश्य कार्यरत हुआ है, उसका नाम है 'और इंसान मर गया '1948'। इसके लेखक रामानंद सागर स्वयं विभाजन के भुक्तभोगी हैं। इस उपन्यास का मूल स्वर नष्ट होती हुई मानवता के प्रति वेदना की है। उपन्यास में वर्णित इस पंक्ति को देखें —"वर्षों की गुलामी के बाद स्वतंत्रता हो रहे भारत ने बहुत सी कुर्बानियां दी है, जिनमें सबसे बहुमूल्य वस्तु है— इंसानियत।" 11 इस उपन्यास में लिखा यह वाक्य आज भी वेद वाक्य है "दुनिया का सारा प्रपंच आखिर रुपये ही से तो है।" ऐसे ही कई कथन हैं, लेखक के जो संग्रहित करने योग्य हैं।.....जो आज के युग में भी सच के करीब हैं।

दूसरा उपन्यास 'कालेकोस' '1957' बलबंत सिंह की रचना है। पंजाब का विभाजन और भारतीय निवासियों (हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई) की मानसिक प्रतिक्रिया का प्रभावशाली चित्रण है। लेखक ने बंटवारे के कारणों और उनसे उत्पन्न स्थितियों, सम्बन्धों और संवेदनाओं का प्रभावशाली ढंग से उद्घाटन किया है। "यह सब पूंजीवादी व्यवस्था का दोष है, उस अंग्रेज को दोष है जो अपना फायदा हमें लड़ाने में देखता है।" 12

तीसरा उपन्यास 'झूठा सत्य' '1958-1960' में रचित यशपाल की कथा स्वतंत्रताकालीन भारत 'वतन और देश' और समकालीन भारत 'देश का भविष्य' का जीवंत उदाहरण है। यह कह सकते हैं कि उपन्यास का पहला भाग विभाजन के कारणों का संकलन है और दूसरा भाग विभाजन के परिणामों का। वस्तुतः "यह, भारत विभाजन का औपन्यासिक महाकाव्य है।" 13

चौथा उपन्यास "लौटे हुए मुसापिफर" '1963' कमलेश्वर की रचना है। यह भी विभाजनकालीन निम्न मध्य वर्गीय व्यक्ति व समाज का यथार्थ चित्रण है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें विभाजन की समस्या को अशिक्षित और सामान्य मुसलमानों की दृष्टि से देखा गया है। कथाकार ने मूल समस्या के चित्रांकन के लिए परोक्षतया तीन चरणों की व्यवस्था की है। पहले चरण में यह बताने की कोशिश की देश में धार्मिक एवं जातीय सौहार्द्रपूर्ण वातावरण था, वे कहते हैं कि "जब

हिन्दुओं की बस्ती से ताजिये गुजरते थे तो उनपर गुलाब जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोद में उठाए ताजियों के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़ कर फेंके हुए मखाने उठाकर श्रद्धा से आँचल में बाँध लेती थी। इसी प्रकार जब रामलीला का विमान उड़ता था तो.....मुसलमान बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए आया करते थे—"बोलो राजा रामचन्द्र की जय।" 14

दूसरे चरण में साम्प्रदायिक दंगों का चित्रण है। कुछ इस प्रकार "हिन्दुस्तान में दो कौमें रहती हैं और अब वे साथ-साथ नहीं रह सकतीं।" "हर आदमी दूसरे को शक की निगाह से देख रहा था।"

तीसरे चरण में कथाकार कुछ मुस्लिम पात्रों के माध्यम से यह बताने की कोशिश करता है कि "शहर के मुसलमान अंदर ही अंदर खुश हुए, पर ऊपर से कटे हुए थे साथ ही उनमें कहीं भय और भी गहरा उतर गया था।" 15

इस शोधकार्य का पांचवा उपन्यास फणीश्वरनाथ जी की आंचलिकता की महक के साथ लिखा हुआ उपन्यास 'जूलूस' '1965' है। विभाजन से सम्बद्ध उपन्यासों की शृंखला में उपलब्ध यह ऐसा पहला उपन्यास है, जिसकी कथा पूर्व पाकिस्तान (वर्तमान बंगला देश) के शरणार्थियों को आधार बनाकर चलती है। इस उपन्यास में सबसे बड़ी समस्या बसने और भावात्मक स्तर पर जुड़ने की समस्या का चित्रण है।

शोधकार्य का छठा लक्षित उपन्यास 'आध गाँव' 1966 राही मासूम रजा की रचना है। इस उपन्यास में विभाजनोपरांत उसके देश पर पड़नेवाले कुप्रभावों का वर्णन है। यह वर्णन भी चित्रात्मक है। सम्भवतः देश विभाजन पर आधारित यह पहला उपन्यास है, जिसके कथाकार राही मासूम रजा स्वयं एक मुसलमान हैं। राही जी पाकिस्तान के निर्माण के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय और मुसलमानों को ज्यादा जिम्मेदार ठहराते हैं। यह एक भुक्तभोगी का उपन्यास है। वे कहते हैं "हम न जाने वाले हैं कहीं। जाये वे लोग जिन्हें हल बैल से शरम आती है। हम त किसान हैं, तन्नु भाई। जहाँ हमारा खेत, हमारी आधी जमीन वहाँ हम।" 16

शोधकार्य का आखिरी पड़ाव भीष्म साहनी के सुविख्यात लघु उपन्यास 'तमस' '1973' की मार्मिक दुनियां है। प्रगतिवादी लेखकों की श्रेणी में मूर्धन्य उपन्यासकार ने विभाजन के पहले देश में हालातों को अपनी लेखनी से अवगत कराने की कोशिश की है। दो खण्डों में विभाजित यह उपन्यास पांच दिनों की कहानी है, परन्तु उन पांच दिनों के पीछे बहुत सारे दिन, बहुत सारे वर्ष और बहुत सारी शताब्दियाँ झाँकती हुई नजर आती है। इस उपन्यास में साफ-सीधे-स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि तनावपूर्ण माहौल का निर्माण धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिक प्रचार के फलस्वरूप होता है।

निष्कर्ष

अंततोगत्वा प्रस्तुत मीमांसाओं के फलस्वरूप यह सत्य कहीं अधिक प्रमाणिक होता है कि 1947 में हमारी आजादी के नवजात को प्रसवकाल में ही जातीयता एवं अस्तित्व की प्रभुता के रूप में मानसिक व्याधि घेर चुकी थी। किन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना को यदि हम तटस्थ एवं

निष्पक्ष रूप से अवलोकित करने की कोशिश करते हैं तो दो वर्गों का लेखन—भुक्तभोगी और श्रव्य—शोधित रचनाकारों— दोनों, में एक ही विशेष बात उद्घाटित होती है। वह बात है कि देश का बंटवारा 'देशहित' के बजाए चंद लोगों के 'स्वहित' से अधिक प्रेरित था। आम भारतीय ने उस समय भी इस विभाजन को संघर्ष स्वीकृति नहीं प्रदान की थी। तो क्या हुआ कि उस समय हम भारतीयों की सामर्थ्यता शिक्षा के गणनात्मक स्तर पर बहुत कम था, किन्तु हमारे देश की विरासत, में सुसंस्कृत एवं सक्षम समाज की कमी नहीं थी। साहित्यिक संदर्भ में हमें इतिहास की सांस्कृतिक, सामाजिक मानसिकता का सच देखने को मिलता है।

अतः इस गवेषणा की उपलब्धि वर्तमान भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या—'जाति के आधार पर समाज का विभाजन' और मनुष्य को 'विवशता से आक्रमकता तक की बनती—बढ़ती मानसिकता' के कारणों को उजागर करने में सफल रही है। आज हम क्रिकेट में विश्व के किसी देश से हार जायेंगे सुखद तो नहीं है किन्तु स्वीकृत है। वहीं टीम इंडिया यदि पाकिस्तान से हार गई तो 10 वर्ष का भारतीय बच्चा भी 'अपमान—सी मानसिकता' से घिर जाता है। कभी सोचा है—क्यों? ऐसे न जाने कितने 'क्यों' को आईना दिखाता है। इस औपन्यासिक कथानक की अनुभूति के स्तर की व्याख्या। किसी रचना का शिल्प और शास्त्रीय ज्ञान विद्वानों के लिए उपयोगी है। विद्वान बनाने के लिए जरूरी है। वहीं इस शोधकार्य का प्रयोजन भारतीय मानसिकता को स्वस्थ, सक्रिय एवं सौहार्द्रपूर्ण माहौल की आवश्यकता को अनुभूति के स्तर पर जन्म देने की एक कोशिश है। इससे आतंकवाद नहीं मितेगा, अपने देश की धरती पर 'आतंकवादी मानसिकता' का विनाश होगा। वह मानसिकता जिसकी शुरुआत क्रिकेट जैसे खेल में हार जाने के बाद राम और रहमान के बीच अजनबीपन का रिश्ता बनाता है। वह मानसिकता जो अपने देश में रहता तो है, परन्तु बसना लंदन में चाहता है और इसके लिए आतंकी माफियाओं का पिछलगु पीट्टु बनने को तैयार है। वह मानसिकता जो यह नहीं समझ पा रहा है कि हमारे (भारत) और उसके (पाकिस्तान) नफरत की जमीं पर हम पुनः एक बार पश्चिमी लोगों को अपना मानक बना रहे हैं, जिन्होंने हमें सदियों पिंजरे में कैद रखा था। चिड़िया सोने की होगी तो पिंजरे में रह सकती है, किन्तु जीवित चिड़िया तो तभी गाएगी जब उन्मुक्त गगन में होगी। शायद तभी बंटवारे पर लिखेनवाला हर लेखक हिन्दु, सिक्ख, पंजाबी बाद में था और भारतीय पहले। हर 'वाद' और 'जात' के ऊपर सबसे बड़ा सच है कि इस बंटवारे से जब उस वक्त का हिन्दू—मुस्लिम का आम वर्ग खुश नहीं था, तो पिंजरे आज 21वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी इन दोनों समुदाय के आम वर्ग क्यों वहम में फंसते जा रहे हैं। तब हम शायद समझ नहीं पाये किन्तु आज...? हम जनता हों या सरकार, लेखक हों या पाठक, एक्टर हों या एडिटर, वक्ता हों या श्रोता, हर जगह एक शकस हमारे वजूद से चिपका हुआ है—वह है भारतीय। ... और कोई भारतीय भारत को बाँटे जाने का विरोधी था और है। फिर आज इतना आतंक क्यों ...?

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सं०—गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत 1973., राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण, पृ०—143.*
2. *डॉ. मंजुला ,साहित्य के आईने में विभाजन का इतिहास, 2009,मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०—12.*
3. *उपरिवत् — पृ० सं०— 11*
4. *राजेन्द्र यादव : कहानी :स्वरूप और संवेदना, पृ०, नेशनल पब्लिकेशन हाउस।*
5. *के० के० भाटिया : शिक्षा का दर्शनशास्त्रीय स्वरूप, पृ०—111, कल्याणी पब्लिशर्स*
6. *राजेन्द्र यादव : कहानी स्वरूप और संवेदना, पृ०—65*
7. *यशपाल : झुठा सच, मूल प्रति, पृ०—21.*
8. *अमृतराय : बीज, मूल प्रति, पृ०—330—331.*
9. *जॉश मलीहाबादी : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मार्च— 1979, पृ०—13.*
10. *यशपाल : झुठा सच, पृ०—21.*
11. *रामानंद सागर : और इंसान मर गया*
12. *बलबंत सिंह : काले कोश, पृ०— 264.*
13. *सन्मथनाथ गुप्त : समसामयिक हिन्दी साहित्य उपलब्धियां, ; पृ०— 71.*
14. *कमलेश्वर : लौटे हुए मुसाफिर, पृ०—38*
15. *उपरिवत् : पृ०— 94*
16. *परमानंद श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, 1985, पृ०—114 वाणी प्रकाशन, पृ०— 268.*